हमारे दौर के तीन रंगभेद (पैसा, दवाई और भोजन): छठा न्यूज़लेटर (2021)।

विली बेस्टर (दक्षिण अफ़्रीका), क्रॉस रोड्स, 1991.

प्यारे दोस्तों,

ट्राइकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कोरोनावायरस महामारी के आगमन की घोषणा करने के बाद के शुरुआती महीनों के दौरान भारतीय उपन्यासकार अरुंधति रॉय ने अपनी **लेखनी** के माध्यम से यह उम्मीद ज़ाहिर की कि यह महामारी 'इस दुनिया और आगामी दुनिया के बीच एक रास्ता तैयार करेगी'। दूसरे शब्दों में कहें तो उन्होंने उम्मीद ज़ाहिर की कि दुनिया अपने उन गहराते संकटों को स्वीकार करेगी तथा सामाजिक संरचनाओं को पुनर्व्यवस्थित करने की शुरुआत होगी, जिन संकटों को महामारी ने और गहरा दिया है। यह तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक कि दुनिया के ज़्यादातर देशों के वर्ग चरित्र को बदला नहीं जाता।

संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप तथा विकासशील दुनिया के बड़े देशों जैसे भारत और ब्राज़ील में सिर्फ़ समस्याओं को स्वीकार कर लेने भर से बदलाव की इबारत नहीं लिखी जा सकती। पिछले साल की घटनाएँ इसकी पुष्टि करती हैं। इन देशों में प्रभुत्वशाली वर्गों ने सार्वजनिक धन का उपयोग संकटग्रस्त और जन-विरोधी पूँजीवादी तंत्र को उबारने में किया।

उन्होंने तंत्र में बदलाव लाकर जनता के हितों को तरजीह देने की जगह मुट्ठी भर लोगों के मुनाफ़ों की तरफ़दारी की।

शी लू (चीनी जनवादी गणराज्य), दक्षिणी शांक्सी में युद्ध, 1959.

ऑक्सफ़ैम की एक हालिया **रिपोर्ट** बताती है कि 'महामारी के शुरू होने के बाद से दुनिया के दस सबसे धनी लोगों की कुल संपत्ति में आधा ट्रिलियन डॉलर की बढ़ौत्तरी हुई है– यह रक़म सबके लिए कोविड-19 का टीका उपलब्ध कराने और

महामारी के कारण ग़रीबी के चंगुल में फँसने से सबको बचाने के लिए आवश्यक रक़म से भी ज़्यादा है। इस रक़म को टीका और ग़रीबी उन्मूलन पर ख़र्च करने के बजाय अवैध कर–मुक्त देशों और मोटे बैंक खातों में इकट्ठा होने दिया गया। **वैक्सीन–राष्ट्रवाद** और बढ़ती भुखमरी पूँजीवादी समाज की विशेषता बन गई है।

इस बीच, चीन में समाजवादी परियोजना के तहत ग़रीबी को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है। नवंबर 2020 में, दक्षिण–पश्चिम चीन में गुइझोऊ प्रांत के अधिकारियों ने **घोषणा** की कि सबसे निर्धन नौ ज़िलों को ग़रीबी सूची से हटा दिया गया है। जिसका मतलब है कि देश के सभी 832 निर्धन ज़िले को अब ग़रीबी से बाहर निकाल लिया गया है। चीन की नीतियों ने सात वर्षों में 8 करोड़ लोगों (जर्मनी की लगभग पूरी आबादी) को ग़रीबी से बाहर निकाला है। 1949 की क्रांति के बाद के दशकों में कुल मिलाकर लगभग **85** करोड़ चीनी लोगों ने खुद को ग़रीबी के चंगुल से बाहर निकाल लिया है। इस परिवर्तन को संभव बनाने में तीन कारणों ने अहम भूमिका निभाई है: पहला, कोई भी चीनी परिवार अब ग्रामीण ग़रीबी रेखा से नीचे नहीं रहेगा। दूसरा, कम्युनिस्ट परियोजना भूख और कपड़ों की 'दो चिंताओं' को ख़त्म करेगी। तीसरा, चीनी राज्य शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और आवास की 'तीनों गारंटियों' को प्रदान करना सुनिश्चित करेगा। यह सब कुछ महामारी के दौरान किया गया।

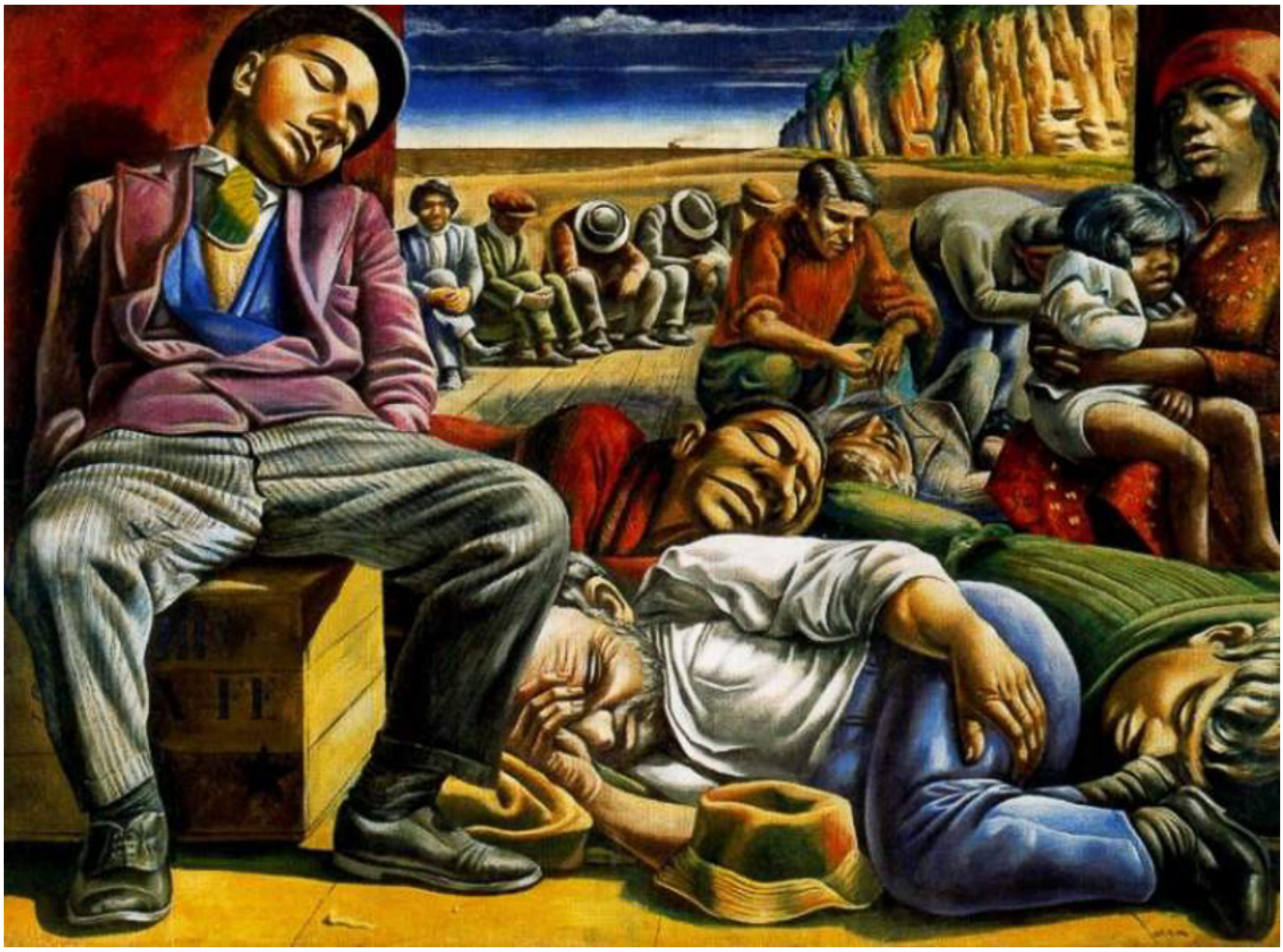

एंटोनियो बेर्नी (अर्जेंटीना), डेसोकुपाडोस ('बेरोजगार'), 1934.

मुख्यत: ग़रीब देशों में विकसित हुई समाजवादी परियोजना पूँजीवादी परियोजना से निश्चित रूप से बेहतर है जो अपने

देशों में मौजूद अकूत धन के बावजूद संकटों से घिरी हुई है। इस तंत्र के विनाशकारी चेहरे का खुलासा करने के लिए निम्नलिखित आँकड़े काफ़ी हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की **गणना** के अनुसार 2020 की पहली तीन तिमाहियों के दौरान कुल श्रम आय में औसतन 10.7% की कमी आई। श्रम आय में आई यह कमी $3.5 ट्रिलियन के बराबर है (यह 2019 के कुल वैश्विक उत्पादन का 5% है)। इसका मतलब यह है कि पूँजीवादी राज्यों में श्रमिक वर्ग ने दो चिंताओं (भूख और कपड़ों) और तीन गारंटियों (शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास) का ख़र्च वहन करने की अपनी क्षमता खो दी है। ये सारी चीज़ें मुख्यत: निजीकरण के शिकंजे में हैं।

समाजवादी देशों और वैश्विक समाजवादी आंदोलन की कमज़ोरी के कारण उनकी परियोजना के फ़ायदों को एक गहन सूचना युद्ध के तहत नकार दिया गया है और मुनाफ़ों के बजाय लोगों के हितों को तरजीह देने के उनके सिद्धांतों को वैश्विक नीतिनिर्माण प्रक्रियाओं में समुचित स्थान नहीं मिला है। इससे अलग वर्तमान दौर को तीन रंगभेद परिभाषित करते हैं।

1. **पैसे का रंगभेद**. विकासशील देशों के कंधों पर 11 ट्रिलियन डॉलर से ज़्यादा का **विदेशी क़र्ज़** लदा हुआ है। ऐसा अनुमान है कि इस कैलेंडर वर्ष के अंत तक इस क़र्ज़ के ब्याज आदि पर उनको क़रीब 4 ट्रिलियन डॉलर का भुगतात करना पड़ेगा। पिछले साल के दौरान चौसठ देशों ने स्वास्थ्य सेवा की तुलना में क़र्ज़ के भुगतान के ऊपर ज़्यादा **ख़र्च** किया। विभिन्न बहुपक्षीय एजेंसियों की तरफ़ से छोटी–मोटी सहायता के सहारे क़र्ज़ के भुगतान को स्थगित करने की बात चल रही थी। क़र्ज़ स्थगन की यह बातचीत उस समय चलनी शुरू हुई जब अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने देशों को **आदेश** दिया कि वो ज़्यादा क़र्ज़ लें क्योंकि ब्याज दर कम हैं। ज़्यादा क़र्ज़ देने की जगह पर क्यों न विदेशी क़र्ज़ को रद्द कर दिया जाए और साथ–ही–साथ अवैध करमुक्त देशों में इकट्ठा कम–से–कम 37 ट्रिलियन डॉलर की रक़म को भी ज़ब्त किया जाए? क़र्ज़ को निरस्त करने की प्रक्रिया को अक्सर "माफ़ी" नामक शब्द से परिभाषित किया जाता है। लेकिन इसमें माफ़ करने वाली कोई बात नहीं है। यह क़र्ज़ औपनिवेशिक लूट और चोरी के लंबे इतिहास का परिणाम है। जहाँ धनी देश निम्न और शून्य ब्याज दर पर क़र्ज़ लेने में सक्षम होते हैं, वहीं विकासशील दुनिया को अधिक ब्याज दरों का भुगतान करना पड़ता है तथा कोविड-19 संक्रमण के चक्र को तोड़ने के लिए उपयोग की जाने वाली धनराशि को **क़र्ज़ों** को चुकाने में लगाना पड़ता है।
2. **दवाई का रंगभेद**. विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक टेड्रोस अदनोम घेबरेयेसस ने हाल ही में **कहा** कि दुनिया एक 'भयावह नैतिक विफलता' के कगार पर खड़ी है। वो पूँजीवादी परियोजना को परिभाषित करने वाले वैक्सीन राष्ट्रवाद और वैक्सीन की जमाख़ारी का उल्लेख कर रहे थे। उत्तर अटलांटिक (कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम और कई यूरोपीय राज्यों) देशों ने वैक्सीन से जुड़े हुए बौद्धिक संपदा के नियमों को **निलंबित** करने की भारत और दक्षिण अफ़्रीका की प्रार्थना को दरकिनार कर दिया है। इन उत्तरी देशों ने COVAX परियोजना को समुचित रूप से **वित्तपोषित** नहीं किया जिसके परिणामस्वरूप इसके असफल होने का जोखिम बढ़ गया है। अंदेशा बढ़ता जा रहा है कि विकासशील देशों के बहुत सारे लोगों को 2024 से पहले वैक्सीन नहीं मिल पाएगी। उत्तर अटलांटिक देशों ने वैक्सीन की जमाख़ोरी कर रखी है। COVAX की वैक्सीनों की जमाख़ोरी करके कनाडा ने प्रति व्यक्ति 5 वैक्सीन **जमा** कर रखा है। इस तरह के वैक्सीन राष्ट्रवाद और क्यूबा और चीन के डॉक्टरों द्वारा प्रदर्शित समाजवादी अंतर्राष्ट्रीयतावाद में ज़मीन आसमान का अंतर है। इसलिए यह बेहद ज़रूरी है कि क्यूबा के हेनरी रीव इंटरनेशनल मेडिकल ब्रिगेड को 2021 के नोबेल शांति पुरस्कार प्रदान किए जाने के **अभियान** का समर्थन किया जाए।
3. **भोजन का रंगभेद**. 2005 से 2014 के दरम्यान **कम** होती वैश्विक भूख में अब फिर से वृद्धि होने लगी है (इस अवधि के दौरान चीन द्वारा ग़रीबी का पूर्ण उन्मूलन करने के बावजूद ऐसा हुआ है)। अब वैश्विक भूख 2010 के स्तर पर है। खाद्य असुरक्षा पर संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन(FAO) की 2020 में जारी **रिपोर्ट** बताती है कि भूखे लोगों की संख्या 2030 तक बढ़कर 84 करोड़ से अधिक हो जाएगी। लेकिन यह अनुमान भी कम ही है। लोगों को उपलब्ध भोजन की मात्रा और गुणवत्ता में कमी ने दो अरब लोगों (वैश्विक आबादी का 26%) को प्रभावित किया है; आबादी के इस बड़े हिस्से को 'भूख का अनुभव' करना पड़ा है और इन्हें 2019 में 'नियमित रूप से पौष्टिक और पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाया'। यह आँकड़ा 2019 का है, जब महामारी का प्रकोप नहीं पड़ा था। संयुक्त राष्ट्र के विश्व खाद्य कार्यक्रम का **अनुमान** है कि महामारी पर नियंत्रण पाए जाने तक भूखे लोगों की संख्या बढ़कर दोगुनी हो सकती है।भूख की महामारी के विकराल रूप धारण करने पर नीतियों में बदलाव लाया जाना स्वाभाविक है जिससे कि किसानों और कृषि श्रमिकों को सहायता प्राप्त हो सके ताकि वे महामारी के समय में आवश्यक गुणवत्तापूर्ण भोजन का उत्पादन कर सकें। भोजन को सस्ता बनाने के लिए सब्सिडी प्रणाली को मज़बूत किया जाना चाहिए था। हालाँकि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्य बहुपक्षीय एजेंसियों ने विकासशील देशों को सार्वजनिक खाद्य वितरण प्रणालियों की सब्सिडी को बढ़ावा देने की अनुमति देने के कोई संकेत नहीं दिए हैं। भारत में वहाँ की धुर दक्षिणपंथी सरकार सब्सिडी–मूल्य की समर्थन प्रणाली को ख़त्म करना चाहती थी। ऐसा करते ही एक दीर्घकालिक किसान **विद्रोह** फूट पड़ा। इस किसान आंदोलन के परिणामस्वरूप भारत में एक नवीन राजनीतिक यथार्थ के पैदा होने की संभावना प्रबल हो गई है। भारत जैसे देशों में सब्सिडी में कटौती करने की निष्ठुर नीति के पीछे एक बड़ा पाखंड है, जोकि भोजन के रंगभेद को सार प्रस्तुत करता है: संयुक्त राज्य अमेरिका ने पिछले बीस वर्षों में अपने किसानों, ज़्यादातर कॉर्पोरेट फ़र्मों को सब्सिडी देने के लिए 1.7 ट्रिलियन डॉलर **ख़र्च** किए हैं जबकि यूरोपीय संघ अपने किसानों को सब्सिडी देने के लिए प्रतिवर्ष 65 बिलियन डॉलर की रक़म **ख़र्च** करता है। जिन नीतियों को उत्तरी अटलांटिक देशों में लागू किया जा रहा है उन्हीं नीतियों को दक्षिणी गोलार्ध के देशों में ग़लत ठहराया जा रहा है।

ये वो तीन रंगभेद हैं जो एक समाजवादी परियोजना के लिए प्रतिबद्ध देशों के बाहर की विश्व प्रणाली का **निर्धारण** करते हैं। इस बीच समाजवादी परियोजना के लिए प्रतिबद्ध देशों के ऊपर सैन्य हमलों और **हाइब्रिड युद्ध** की तकनीकों (जैसे सूचना युद्ध, आर्थिक युद्ध और राजनयिक युद्ध) का ख़तरा मँडराता रहता है। उत्तरी अटलांटिक देश सहयोग के बजाय टकराव की नीति अपनाते हैं, जिससे एकजुटता के बजाय विभाजन की नींव पर खड़े संसारिक दृष्टिकोण का निर्माण होता है।

यह महामारी एक परिवर्तन–द्वार बन सकती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इसके नतीजों की वजह से अभिजात वर्ग की आँखों पर पड़ा पर्दा ख़ुद–ब–ख़ुद हट जाएगा। वो बैंकों को उबारने और माँग को गिरने से रोकने में लगे हुए हैं। उनका मक़सद ही यही है। वो क़र्ज़ रद्द नहीं करेंगे। लोगों के लिए वैक्सीन नहीं बनाएँगे या यह सुनिश्चित नहीं करेंगे कि किसानों और खेतिहर मज़दूरों की अगुवाई में खाद्य प्रणाली दुरुस्त रहे। वे ख़ुद से रंगभेदी संरचनाओं को नेस्तनाबूद नहीं करने वाले हैं।

मज़दूरों और किसानों पर, विशेषकर दक्षिणी गोलार्ध के देशों में पड़ने वाले महामारी के नकारात्मक प्रभावों के कारण मज़दूरी में कमी आने की प्रक्रिया को बल मिलता है। इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मोल–भाव की क्षमता मज़बूत होती है क्योंकि जब आय और मज़दूरी में कमी आती है तथा सामाजिक मज़दूरी में गिरावट आती है तब मज़दूरों को कम मज़दूरी देना कंपनियों के लिए आसान हो जाता है। लेकिन जब जीवन स्तर के ख़राब होने की यह प्रक्रिया नाक़ाबिले–बर्दाश्त हो जाती है तब एक उग्र प्रतिरोध का जन्म होता है ⊠

भारतीय खेतिहर मज़दूरों और किसानों का विद्रोह, **केन्या** और **पेरू** के स्वास्थ्य कर्मचारियों की हड़ताल, **हैती** और **ट्यूनीशिया** में लोगों का आम विरोध, **ब्राज़ील** में महामारी से निपटने में विफल रही सरकार के ख़िलाफ़ संघर्ष, गर्भपात को वैध क़रार दिए जाने के लिए **अर्जेंटीना** में बड़े पैमाने पर हुए प्रदर्शन: ये लोगों की बग़ावत के संकेत हैं। इसे जी. डब्ल्यू. एफ़. हेगेल ने फ़ेनेमेनेलॉजी ऑफ़ स्प्रिट (1807) में 'गंभीरता, पीड़ा, धैर्य, तथा नकारात्मकता की उपज कहा था। यह 'नकारात्मकता की उपज' है, ये संघर्ष है जिन्हें संगठनों द्वारा मूर्त रूप दिया जाता है, ये आंदोलन है जो कामगार वर्ग और किसानों को आत्मविश्वास और शक्ति से लबरेज़ कर रहा है, जो किसी भी एजेंडा को आगे बढ़ा पाएँगे। ये जब आगे

बढ़ेंगे तो रास्ते खुद–ब–खुद तैयार हो जाएँगे।

मोनसेंगो शुला (कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य), ला रेवोलूश्यों न्यूमेरिक (' डिजिटल क्रांति'), 2016.

पूँजीवाद के सामान्य संकट से पैदा हुई आम समस्याओं को हल करने की क्षमता अभिजात वर्ग में नहीं है। वो निश्चित रूप से महामारी के कारण उत्पन्न हुई असाधारण समस्याओं को हल करने में बिलकुल भी सक्षम नहीं हैं। आंदोलनों की भूमिका यहाँ से शुरू होती है। वो इस महामारी से निकलने का रास्ता बनाने के लिए ज़रूरी एजेंडे को आगे बढ़ाते हैं। लेकिन इसके अलावा वो पूँजीवाद के दुर्दशा–चक्र से बाहर निकलने का मार्ग भी तैयार करते हैं ☒

स्नेह–सहित,

विजय

I am Tricontinental:

Mwelela Cele. Researcher, Johannesburg Office.

As a researcher for Tricontinental: Institute for Social Research in South Africa, I miss the opportunity to visit archive repositories in search of old images and other archival material. Because of Covid-19, most archives and special collections are closed or are opened for only a short time on certain days. I also miss being actively involved in dossier and working document launches in-person through panels at The Commune Bookshop and being involved in organising Colloquiums at The Forge, where we organised gatherings before Covid-19, discussing politics and a wide range of issues that affect us. For now, the focus is on online programmes, research, and publications: I am involved in organising online discussions/webinars as well as accessing archival material online, conducting oral history interviews, and researching images for dossiers.

tricontinental

<मैं हूँ ट्राइकॉन्टिनेन्टल >

मिवेल्ला सेले, शोधकर्ता, दक्षिण अफ़्रीका

दक्षिण अफ़्रीका में ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान के शोधकर्ता के तौर पर पुरानी तस्वीरों और दूसरी पुरालेखीय सामग्रियों को इकट्ठा करने के लिए पुरालेखीय संग्रहालयों में न जा पाने का मुझे मलाल रहता है। कोविड-19 के कारण, अधिकांश अभिलेखागार और विशेष संग्रह या तो बंद हैं या फिर कुछ ख़ास दिनों पर सिर्फ़ कुछ समय के लिए ही खोले जाते हैं। कम्यून किताबघर में कार्यकारी दस्तावेज़ों का पैनल के माध्यम से विमोचन किए जाने के दौरान व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर शामिल नहीं हो पाने और द फ़ोर्ज में गोष्ठियाँ नहीं आयोजित कर पाने का भी मलाल है जिसमें हम राजनीति और ख़ुद को प्रभावित करने वाले तमाम मुद्दों पर चर्चा करते थे। अभी हमारा ध्यान ऑनलाइन कार्यक्रमों, शोध कार्य और प्रकाशनों पर केंद्रित है। वर्तमान में मैं ऑनलाइन चर्चा/वेबिनार आयोजित करने के साथ-ही-साथ ऑनलाइन पुरालेखीय सामग्रियों को इकट्ठा करने, मौखिक ऐतिहासिक साक्षात्कार और डॉजियर के लिए तस्वीरों पर शोध कर रहा हूँ।